लीला-खेल

श्री श्री माँ की चिरज्योतिर्मयी हास्यमयी मूर्ति, बाल-सुलभ सरलता, विनय, हास्यकौतुक तथा उनके परिपूर्ण हृदय की अबाध गति का जिन्होंने भी दर्शन किया, वे मुग्ध हो गये। उनकी बातों में, दृष्टि में, प्रत्येक भावभंगी में एक ऐसी मधुरता है कि उसकी तुलना नहीं है। उनके शरीर से, प्रत्येक श्वास से, उनके पहने वस्त्रों में से तथा शय्या से पवित्रता की एक दिव्य गंध सदा आती रहती है। उनके गान के स्वर में हृदय में हृदय की पवित्र भावराशि निर्झर की शीतल धारा की तरह निर्गत होती है।

वे स्वयम् पूर्ण निर्मुक्त, उदासीन हैं; अनन्त नील आकाश की तरह निर्लिप्त होने पर भी सबको अपनी ओर खींचती हैं। वे सब धर्मों, सब जातियों के मनुष्यों तथा पशु-पक्षी-वृक्ष-लताओं में एक अखण्ड प्राणलीला का संचार देख ही सबको एक ही आनन्द का प्रतिरूप मान सबके प्रति समान भाव से अनुराग, श्रद्धा और सम्मान का प्रदर्शन करती हैं।

माँ कहती हैं "मेरे लिये नया कुछ देखने, कहने और सुनने को नहीं है।" फिर भी कभी-कभी साधारण-सी चीज लेकर इस प्रकार प्रसन्न होतीं मानो किसी बच्चे को गुड़िया मिल गयी है।

भक्तों के साथ माँ की कितनी ही लीलाएँ देखी हैं कि जिनका अन्त नहीं। एक बार सबकी इच्छा हुई कि श्री श्री माँ को बालकृष्णके रूपमें देखें और फिर किशोर कृष्णके रूप में सजावें। सब ने मिलकर माँ को उसी तरह सजाया। एक ही माँ दोनों रूपों में क्या सजीं? बाल रूप और किशोर रूप दोनों ही में उनकी मुखश्री कितनी समुज्ज्वल हो उठी! दृष्टि की स्निग्धता, ललाट की प्रशान्त विशालता, मुख का पुनीत लावण्य, देहभंगी का लचीलापन किस अज्ञात दिशा में प्रगट हो माँ के मुख की शोभा की वृद्धि कर दिव्य ज्योति प्रदान कर रहा था वह अनुभव की एक बात है। यह केवल असाधारण ही नहीं वरन् अलौकिक तथा अभूतपूर्व दृश्य था।

बालकृष्ण रूप में माँ की हँसती हुई मुद्रा का एक चित्र भी लिया गया था। उनकी हँसी में मानो शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु तक भाग ले रहा था। हँसी की ओट में पवित्रता की अपूर्व ज्योति माँ की मुखश्री को कितना ओजस्वी बनाये थी यह सभी भक्त लक्ष्य कर रहे थे। ऐसी पावन पुनीत हँसी कोई प्राकृत मनुष्य हँस सकता है, ऐसा नहीं मालूम होता।

जहाँ श्री श्री माँ उपस्थित होती हैं वहाँ समवेत भक्तों के हृदय में अपूर्व माधुर्य्य का भाव फूट पड़ता है। जिसका जो भाव है, उसी में वह एक अपूर्व निर्मलता का अनुभव कर आनन्द प्राप्त करता है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण को यशोदा बाल रूप में देख मोहित होतीं, श्रीदामा और सुदामा स्वभाव से मुग्ध होते, गोपियाँ मधुर-भाव में विभोर हो उठतीं उसी प्रकार माँ के भक्त भी अपनी भावना के अनुरूप माँ का दर्शन पाते हैं।

बचपन ही से माँ का यही अपूर्व प्राण-भरा[१], मन-भरा[२] खेल चल रहा है। उनके साथ खेले बिना उनकी सहेलियों को खेल में आनन्द ही न आता था। उसके बाद जीवन में क्या बच्चा, क्या बूढ़ा, क्या जवान सभी माँ के पवित्र संसर्ग में एक बार अकथनीय आनन्द से मुग्ध हो माँ से बार-बार पूछते, माँ अब फिर कब मिलोगी ?" माँ जहाँ भी रहतीं वहाँ आनन्द का बाजार लग जाता, एक नूतन भाव की उद्दीपना से हजारों आदमी मानो सजीव हो उस दिव्य भाव में नाच उठते और फिर माँ वहाँ से चल देतीं तो वह स्थान महाशून्य में परिणत हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि माँ के रूखे बिखरे हुए केश, ढीला ढाला वेश तथा चाल को देख उन्हें कोई पागल समझ भयभीत होकर उनसे दूर जाने की चेष्टा भी किसी ने की, किन्तु उनकी मधुर मूर्ति की तरफ से दृष्टि हटाने में समर्थ नहीं हुआ।

साधारण हँसने बोलने में प्रतिदिन उनमें जिस असाधारण शक्ति का विकास होता देखा जाता उसकी सीमा नहीं है। श्री श्री माँ से इस विषय में कुछ पूछने पर माँ कहती हैं, "साधारण और असाधारण सब तुम्हारे लिए है, मैं तो हर समय हर अवस्था में एक भाव में ही हूँ।" और भी कहती हैं "सब ही तो खेल है, तुम लोगों को खेलने की साध है, इसलिए हँसी तमाशे में भी इस शरीर को तुम खींच ले जाते हो। यदि यह शरीर स्थिर, धीर, गम्भीर होकर रहता तो तुम दूर-दूर ही रहते। खूब सुन्दर तरीके से

---

१. प्राणो को भरपूर करने वाला

२. मन को मोह लेने वाला, अपूर्व खेल चल रहा है।

आनन्द का खेल खेलना सीखो। ऐसा होने से खेल ही में खेल का चरम पाओगे-समझे !"

जो साधारण के प्रतिदिन के अनुभव से परे है वही उसके लिए असाधारण है; किन्तु जो विभिन्न भावों का एक ही भाव समावेश कर अद्वैत आत्मानन्द में विभोर हों, उनमें कभी जीवभाव, कभी ईश्वरभाव, कभी ब्रह्मभाव, जैसे स्वतः स्फुरित विभूतियों को खेलों के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। माँ के शरीर में स्वेच्छा अनिच्छा का अस्तित्व ही नहीं है। कभी-कभी भक्तों को सद्बुद्धि और शुद्धभाव की प्रेरणा देने के लिए नाना प्रकार की अलौकिक विभूतियों का प्रकाश होता रहता है, कभी श्रद्धालु की एकांत कामना ही माताजी के लौकिक व्यवहार से खिल उठती है। माँ कहा करती हैं "यह शरीर तो एक ढोल है जो जिस ताल से बजावेगा वही आवाज सुनेगा। मैं देखती हूँ कि सब जगह एक ही खेल चल रहा है।"

१९३२ ई० के जून के महीने में जिस दिन माँ ढाका छोड़ कर आयी उसके पहिले दिन पाँच बजे रमना आश्रम में अनेक स्त्री, पुरुष, लड़के, लड़की प्रसाद खाने के लिए बैठे थे, माँ भी उनके साथ बैठी थीं। इतने में काली घटा छा गयी, आँधी आने वाली है देख सब पानी बरसने की आशंका करने लगे। इसी समय एक दूसरा दल भी आकर खाने बैठ गया। जिन-जिन का भोजन समाप्त होता जा रहा था, उन लोगों से उठने को कह माँ स्वयम् वहीं बैठी रहीं। जब सबका खाना शेष हो गया तो माँ बोलीं "मैं स्नान करूँगी"। शाम के समय स्नान की बात सुन अनेकों ने मना किया, किन्तु माँ भला कब किसकी सुनने वाली

हैं । बहस हो रही थी कि जोर से पानी बरसने लगा । सारा आँगन पानी से भर गया । माँ उस पानी और मेह में अपूर्व भाव से इधर-उधर दौड़ने लगीं । साथ में अनेक स्त्री, बच्चे, युवा, बूढ़े अपने वस्त्रों की चिंता न करके कीर्तन करने लगे । रात को ९ बजे सब लोग अपने घर लौटे उनमें से कोई बीमार भी थे किन्तु किसी को कुछ न हुआ ।

प्राय: देखा गया है कि माँ हँसते-हँसते आँधी, पानी, लड़ाई झगड़े दृष्टिपात से ही रोक देती हैं ।

माँ स्वभाव से ही थोड़ा खाती हैं, इतना कम खती हैं कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । शरीर में जब नाना प्रकार की योगक्रियाओं का प्रकाश होता था तब माँ कितने ही दिन उपवास में ही बिता दिया करती थीं । सुना है कि उन क्रियाओं की समाप्ति न होने तक माँ को खाने का ख्याल ही नहीं आता था । जब माँ थोड़ा खातीं अथवा बिलकुल ही नहीं खातीं तब माँ की मुखश्री उज्ज्वल, शरीर स्वस्थ तथा चित्त में प्रसन्नता भरपूर रहती । कम खाने के अनेक नियम उनके व्यवहार से पहले ही प्रकट हुए थे । पाँच महीने माँ ने केवल शेष रात्रि में कुछ खाकर बिताये । सब मिलाकर तीन ग्रास दिन में तथा तीन ग्रास रात में खाकर आठ-नौ महीने बिताये । पाँच छ: महीने दिन में दो बार थोड़ा पानी और फल खाकर काटे । सप्ताह में केवल दो दिन दोनो समय कुछ अन्न खातीं बाकी दिन थोड़ा फल खाकर काट देतीं । इस प्रकार छ: सात महीने बिताये । १९२४ से खाना स्वयम् अपने हाथ से नहीं खा पाती थीं, मुँह के पास हाथ खुल जाने से ग्रास गिर जाता था । हाथ की पीड़ा इसका कारण नहीं

थी । उस समय एक नूतन व्यवस्था हुई, जो माँ को खिलाती थी उसकी दो अँगुलियों से जितना अन्न उठता था उतना दिन-रात में केवल दो बार खाकर चार पाँच महीने काटे । उन दिनों हर दूसरे दिन एक बार थोड़ा सा पानी पीती थीं । पाँच छ: महीने सुबह तीन चावल के भात तथा रात को तीन चावल के भात और पेड़ से अपने आप गिरे हुए दो-एक फल खाकर दिन व्यतीत किये । कभी अन्न मुँह से लगा कर गिरा देती थीं । फिर ऐसा हुआ कि जो कोई उन्हें खाना खिलाती वह एक सांस में जितना खाना-पानी खिला-पिला सकती केवल उतना खातीं, इस तरह भी दो तीन महीने बिता दिये । यज्ञाग्नि पर एक छोटे डिब्बे में छटाँक चावल दाल (दोनों मिलाकर) उबाल कर खा के भी आठ नौ महीने बिताये । फिर कभी केवल साग-सब्जी उबाल कर उसका रसा, थोड़ा-सा दूध अथवा दो-एक रोटी खाकर बहुत दिन काटे । अनेक समय तो बिना कुछ खाये भी रहीं ।

एक बार जब चावल खाना प्राय: बन्द-सा हो गया तब चावल पहिचान भी नहीं पाती थीं । शाहबाग में एक कहारिन नौकरानी थी, वह खाने बैठी । उसको खाते देख माँ हँसते-हँसते कहने लगीं "यह क्या खा रही है ? क्या सुन्दर रीति से मुख में दे रही है, चबाती है और खाती है—मैं भी खाऊँगी, ।" यही उसकी पत्तल के बराबर जा बैठीं । एक दिन एक कुत्ता भात खा रहा था, वहाँ भी पहुँच रोती हुई सी बोलीं "मैं भी खाऊँगी, मैं भी खाऊँगी" उपरोक्त भावों में देखा जाता कि यदि उनको कोई बाधा देता तो वे बच्चों की तरह जमीन पर लोट कर जिद करतीं । अन्त में माँ ने स्वयं बताया "मनुष्य त्याग करने की चेष्टा करता है,

किन्तु मेरे सभी विपरीत हैं, जिससे त्याग न हो वही व्यवस्था मैं करती हूँ। तुम लोग याद करके रोज तीन चावल का भात खिलाया करो, नहीं तो जैसे अपने हाथ से खाना छूटा वैसे ही भात खाना भी बिल्कुल बन्द हो जायगा।

जो माँ को खिलाया करती थीं उन्हें बहुत सावधान रहना पड़ता कि कहीं एक दाना भी ज्यादा न दे दें। खूब शुद्ध और संयत होकर खिलाना होता तथा खाने के बर्तन और चीजें साफ रखनी होतीं। अन्यथा होने से माँ खाना निगल ही न पाती थीं, मुँह दूसरी ओर को मुड़ जाता था, शरीर आसन पर से ही उठ जाता था। माँ कहतीं "इस शरीर और जमीन (पृथ्वी) में कुछ अन्तर नहीं है, मैं तो जमीन पर या किसी भी जगह पर किसी भी भाव से कुछ रख दो, सब खा सकती हूँ, परन्तु तुम लोगों को सिखाने के लिए आचार, निष्ठा, कर्तव्यपालन सब आवश्यक है, इसीलिए मेरा ऐसा रूप हो जाता है।"

दीर्घकाल तक इतना कम खाने पर भी दुनिया के किसी काम में माँ को दुर्बल या क्लान्त नहीं देखा। बाद में धीरे-धीरे सब काम अपने आप बन्द हो गये, खाना बनाने या और कोई भी काम करने जाने पर शरीर अवश होकर पड़ जाता था। किसी किसी दिन आँच से हाथ-पैर तक जल जाते अथवा अन्य कोई चोट पहुँचती, किन्तु इन सब दुर्घटनाओं की अनुभूति माँ को कुछ न होती थी। माँ कहती हैं, "इच्छा करने से कुछ छोड़ा नहीं जा सकता, कर्म की पूर्णाहुति के साथ-साथ त्याग अपने आप हो जाता है।"

१९२६ ई० मई महीने से आहार सम्बन्धी कठिन नियम

कुछ शिथिल होने लगे। किन्तु जो कुछ भी खातीं, बहुत ही कम, बच्चों की तरह। हाथ से खाना बन्द होने के चार-पाँच साल बाद सबने माँ से फिर अपने हाथ से खाने का अनुरोध किया, माँ को भी कुछ वैसा ख्याल हुआ। खाना लेकर बैठीं, थोड़ा सा मुँह में दिया, बाकी बाँट दिया कुछ धरती पर गिरा दिया, भोजन कुछ भी नहीं हुआ। इसके बाद फिर किसी ने खुद खाने के लिए अनुरोध न किया। माँ बोलीं "मैं देखती हूँ, सभी तो मेरे हाथ हैं, अपने ही हाथ से खाती हूँ।"

श्री श्री माँ का गृह-प्रबन्ध, खाना बनाने की निपुणता तथा पवित्रता एवं खाना परोसने तथा अथिति सत्कार करने में निर्मल प्रसन्नता छोटी उमर से ही देखने में आयी थी। जो कुछ करतीं त्रुटिहीन होता। ताँत पर कपड़ा बुनना, सिलाई, ऊन का काम आदि सभी काम खूब सुन्दर रूप से कर सकती थीं। बहुत से काम जो चेष्टा से भी अन्य लोग न कर पाते थे माँ सहज ही में कर लेती थीं। सब लोग देखकर अवाक् रहते थे। उनकी बनायी हुई तरकारी दाल का स्वाद भी अपूर्व होता, इसलिए निमन्त्रण के समय सबके अनुरोध के कारण खाना बनाते समय माँ को उपस्थित होना ही पड़ता था।

छोटे बड़े सबको खिलाने तथा पहिनाने में माँ को बड़ा आनन्द मिलता था, स्वयम् कुछ न खा, न पहिन दूसरों को तृप्ति देती थीं। एक गुजराती साधु एक बार शाहबाग आये। माँ ने अपनी साड़ी के आँचल से उनका आसन पोंछा तथा खूब मधुरभाव और विनय से खाना खिलाया। खाने की चींजे थाली में ऐसे सुन्दर भाव से सजायी गयीं मानो वे सेवा और श्रद्धा के

स्पर्श से भरपूर हों। उन महात्मा ने कहा "आज तो जगत्-जननी के हाथ से खाया, इतने आदर से तो कभी किसी ने नहीं खिलाया।"

जितने दिन कर सकीं उतने दिन माँ ने घर की, माँ की तरह सब बच्चों (सन्तानों) को खुद बना कर प्रसाद दिया। उनके हाथ का प्रसाद अनेक के हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द का संचार करता। अनेक समय प्रसादादि देते समय भी अनेक अलौकिक घटनाएँ होतीं। एक दिन स्व० निरंजन की स्त्री कुछ संतरे ले गयीं। माँ उठकर प्रत्येक को एक-एक संतरा देने लगीं कारण सभी चाहते थे कि माँ के हाथ से लें। उपस्थित लोगों की संख्या देखते हुए संतरों के कम पड़ने की आशंका थी किन्तु माँ की ऐसी लीला कि सभी को मिल गये। एक बार निरंजन के यहाँ कीर्तन में पचास साठ आदमियों के प्रसाद का आयोजन था किन्तु उपस्थित हुए प्राय: १२० व्यक्ति। माँ यह सुनकर जहाँ अन्न-व्यंजन था वहाँ जाकर खड़ी हो गयीं। बाद में देखा कि सब लोग प्रसाद ले चुके तो भी कुछ बच गया।

आश्रम में कितने ही खाने के सामान और कपड़े माँ के लिए आते थे। स्वयं थोड़ा सा लेकर या कपड़े को एक बार पहिन कर या शरीर से छुवा कर सबको बाँट कर खूब जोर से हँसतीं। बहुत लोग बहुमूल्य सोने-चाँदी के गहने आदि भी माँ को भेंट करते थे। कभी-कभी माँ के दोनों हाथ शंख की, काँच की तथा सोने की चूड़ियों से भर जाते थे। वे सभी वस्तुएँ एक भाव से ग्रहण करतीं, किसने क्या दिया व किसने क्या लिया या रख दिया इस ओर उनकी दृष्टि ही न जाती थी। कुछ गहना तो बाँट दिया बाकी

प्राय: एक हजार का सोना चाँदी गला कर आश्रम की देवमूर्ति के लिए दे दिया गया। उनके निज के पास दो साड़ियाँ ही रहतीं जिनमें से कभी-कभी एक किसी को दे देतीं। यह भी देखा जाता कि देते न देते एक और कहीं से आ जाती।

मैं ढाका से कलकत्ते जाने पर अपने बड़े भाई के तुल्य श्री ज्ञानेन्द्रनाथ सेन के यहाँ ठहरता। उनकी स्त्री हिरण्मयी देवी मुझसे अपने छोटे भाई की तरह स्नेह करती थीं। उनकी जैसी स्नेहलीला आदर-सत्कार में निपुणा, सरला, शुद्धा तथा पतिप्राणा स्त्री बहुत कम होती हैं। उनके पवित्रभाव के कारण माँ स्वयम् भी, अक्सर उनके यहाँ जातीं। माँ एक बार कलकत्ते के कालीघाट में एक मकान में ठहरीं, मैं उनसे मिलने गया। उसी समय एक भक्त ने माँ को ढाका की एक साड़ी पहनायी। माँ उस समय ज्ञानबाबू के घर जाने वाली थीं। रास्ते में कहीं और भी जावेंगी यह सुनकर मैं पहले ही आ गया। घर लौट कर एक मामूली सी साड़ी खरीद कर माँ के लिए रख दी। मैं सोच रहा था कि माँ के आने पर यह साड़ी उन्हें पहनाने से वह ढाका वाली साड़ी ज्ञानबाबू की स्त्री को दे देंगी। इस विषय में किसी और से कुछ न कहा। माँ आयीं, किन्तु एक सादी साड़ी पहिने थीं। माँ आते समय जहाँ से होती आयी थीं वहीं वह साड़ी दे आयीं। मैं अवाक् था! माँ मेरी तरफ देखतीं और हँसती थीं। कोई कुछ नहीं समझ रहा था। अन्त में मैंने स्वयं अपनी बुद्धि की दौड़ की बातें माँ से कहीं।

ऊपर जिस प्रकार माँ ने कम खाने के विषय में अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया है उसी प्रकार अधिक खाने की भी

अनेक घटनाएँ देखी हैं । आठ नौ महीने तक यज्ञाग्नि पर पकाये हुए एक छटाँक अन्न ग्रहण करने के बाद जिस दिन पहली बार साधारण भाव से खाया उस दिन आठ नौ जनों का खाना माँ ने अकेले खाया और एक बार हँसी-हँसी में ६०, ७० पूरियाँ तथा उसके अनुरूप ही दाल तथा सब्जी और एक कटोरी खीर खायी । और एक बार आधमन दूध की खीर खाकर भी, बच्चों की तरह और अधिक खाने का हठ तथा अनुरोध करती रहीं ।

माँ को इतना अधिक खाते देख कहीं किसी की नजर न लग जाय, इस भय से हड़िया पोंछ कर एक दो खीर के छींटे माँ के सिर के कपड़े पर डाल दिये गये । बाद में देखा कि जहाँ-जहाँ छींटे पड़े वहाँ आग से जले के समान हो गया ।

इस प्रकार खाने के समय एवं कभी-कभी बाद में भी उनमें एक अप्राकृत भाव देखा जाता था । माँ कहतीं "मैंने जो अधिक खाया, वह तुम लोगों ही के मुँह से सुना, खाने के समय मुझे तो कुछ नहीं लगा । उस समय अच्छी चीज ही क्यों घास-पत्ता जो भी दो वह भी वैसे ही खा लेती ।" इससे उनके शरीर में कुछ भी विकार नहीं होता । सिर्फ खाना ही क्यों माँ को जब कभी किसी भी काम का ख्याल आता तो उसे करती ही जातीं, अस्वाभाविक होने पर भी उसके फलस्वरूप कुछ अनिष्ट नहीं होता ।

जिस प्रकार देवपूजा के उपचार में गन्ध पुष्प द्वारा अर्चना करके भोग निवेदन किया जाता है, उसी प्रकार मातृ चरणों में एकनिष्ठ भाव से जो जितनी श्रद्धा से द्रव्यादि द्वारा पूजा करता है वह उतना ही आनन्दलाभ करता है । हमने देखा है कि मुरमुरी खीलें तथा अन्य मामूली से फल माँ बड़े आनन्द से ग्रहण करती

हैं । तरकारी में यदि नमक नहीं है या मिठाई में चीनी नहीं है, तब भी यदि कोई श्रद्धाभाव से माँ को खिला रहा हो तो माँ हँसती हुई खाती जाती हैं और फिर "देख तो कैसी है" कह कर सबको बाँट भी देती हैं । और कभी किसी की मुश्किल से संगृहीत सुस्वादु वस्तु को जरा सा मुँह में देकर ही मुँह बन्द कर लेती हैं ।

ढाका गेन्डारिया के रिटायर्ड डिपटी इन्स्पेक्टर तारकचन्द्र चक्रवर्ती वृद्धावस्था में अपने घर के छेने के सन्देश[१] तैयार कर चार पाँच मील पैदल चल एक दिन प्रातःकाल आश्रम पहुँचे । माँ उस समय तक अपने बिस्तरे ही में थीं । वृद्ध आकर 'माँ' 'माँ' कह पुकारने लगे और बोले "मैं बड़े पवित्र भाव से तुम्हारे लिए संदेश लाया हूँ, माँ तुम्हें खाना होगा ।" माँ ने बिना हाथ मुँह धोये बिस्तर पर ही बैठे-बैठे वृद्ध के हाथ से सन्देश खाये और बच्चों की तरह खुश हो ताली बजाने लगीं । तारक बाबू की दोनों आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे । एक दिन बेबी दोपहर के समय कुछ मिठाई तैयार कर आश्रम आ रही थीं । माँ आश्रम में बैठी उस समय कथावार्ता कर रही थीं । तब बेबी आश्रम से प्रायः आध मील की दूरी पर होगी । माँ सहसा हँसती हुई बोलीं "मेरे लिए खाने को कुछ आ रहा है ।" छोटे बच्चों की तरह मिठाई खाने के लिए पहिले ही से प्रस्तुत होकर बैठ गयीं । किसी-किसी दिन किसी के आते ही उससे आग्रह पूर्वक कहतीं "मेरे लिए क्या लाए हो जल्दी निकालो ।" और फिर उसे ले कितना क्रीड़ा-कौतुक करतीं । कभी यह भी देखा गया है कि कोई कुछ लिये माँ की प्रतीक्षा कर रहा है । उधर माँ की निद्रा ही नहीं टूटती ।

---

१. बंगला विशेष मिठाई ।

मैं उन दिनों बीमार था । एक दिन इच्छा हुई कि माँ के लिए कुछ खीर भेज दूँ । खीर तैयार होने पर मैंने अलग से थोड़ी सी चखी यह देखने के लिए कि अच्छी तो बनी है । मेरी बड़ी बहिन जो पास ही खड़ी थीं, बोलीं "यह मिठाई माँ के लिए मत भिजवाओ, जूठी चीज देवता के भोग नहीं लगती ।" मैंने कहा "नहीं, तुम भिजवा दो ।" बाद में सुना उस दिन माँ ने सब खीर अकेले ही खायी ।

और एक दिन की बात है । मैंने कहा "आज माँ के लिए 'शटिर पालो' (बार्ली की तरह एक प्रकार का कन्द का मैदा) तैयार कर भिजवा दो ।" घर के सभी ने उसे बेमन से उसे भिजवाया । पीछे पता चला कि माँ ने उसमें से जरासा भी नहीं खाया ।

ऐसा भी देखा गया है कि कोई खाली हाथ दूर खड़ा हो चुपचाप माँ को भाव उपहार दे रहा है तथा मन ही मन माँ की कृपा का इतना अनुभव कर रहा है जितना शायद कोई अनेक उपहार भेंट कर अश्रुविमोचन करके भी न कर सके । जैसा जिसका भाव रहता है वैसा ही उसे लाभ होता है, माँ की कृपा बाह्य वस्तुओं के देने लेने की अपेक्षा नहीं करती ।

माँ के पास आस्तिक-नास्तिक, धनी-दरिद्र, शिशु-युवा, वृद्ध स्त्री या पुरुष सभी के लिए द्वार खुला है । माँ प्राय: कहा करती हैं "मुझसे मिलने के लिए समय जानना चाहते हो ? मेरा दरवाजा तो हमेशा ही खुला है । तुम्हीं लोग बल्कि संसार की बातों में फँस इस बच्ची की बात भूल जाते हो, मुझे तो हर समय

तुम लोगों का ख्याल रहता है ।" जो बिना देखे ही देखें, देख कर भी न देखें, कुछ न सुनकर भी सुन लें तथा सुनकर भी अनसुनी करें, उनके लिए यह कुछ विचित्र नहीं । दिन-रात, सुख-दुख, क्लान्ति-अक्लान्ति सभी में समभाव से माँ सबके लिए निरन्तर प्रतीक्षा करती रहती हैं ।

प्रतिदिन सुबह से रात तक अनेक भक्त माँ को घेरे रहते हैं । कोई सिंदूर दे रही है तो काई बाल काढ़ रही हैं कोई कह रही है चलो स्नान करा दें, कोई दाँत माजने ही को कह रही है, कोई साड़ी पहना रही है तो कोई जम्पर बदल रही है, कोई मिठाई या फल दे रहा है, कोई माँ से गाने को कह रहा है, कोई चुपचाप माँ के कान में कुछ कह रहा है, उठा ले जाकर कोई एकान्त में कोई गोपनीय बात कहना चाहता है, कोई आकर कहता है 'हटो-हटो, माँ को इस प्रकार दिक न करो ।" इस प्रकार सभी के अनुरोध, मिनती, शोरगुल में माँ अटलभाव से एक ही आसन पर प्रसन्न मुख से बैठे-बैठे घण्टों बिता देती हैं और उनके चारों ओर आनन्द लहराता है । चाहे सब समान भाव से आकृष्ट हों या न हों माँ की स्नेहपूर्ण करुण दृष्टि ऊषा की स्वर्णरश्मि की भाँति सभी पर समान भाव से पड़ती है । कोई भी माँ के पास जाकर हताश या दु:खी होकर लौटते नहीं देखा गया । माँ कहती हैं "ज्ञानी अज्ञानी लेकर ही तो भगवान् का संसार है, जिसे जैसा खिलौना चाहिए उसे वैसा ही देकर शान्त रखना होता है । इसी कारण कोई भी कभी यह नहीं कह सकता कि "माँ मेरी नहीं तुम्हारी हैं ।" जो जितना माँ का सान्निध्य पाता है वह प्रत्येक ही ऐसा समझता है कि माँ केवल उसकी अपनी हैं । सभी अपने प्राणों का अन्तरतम

आवेग माँ के चरणों में नि:संकोच रूप से निवेदन कर उनकी अभय वाणी लाभ कर सन्तुष्ट होते हैं ।

माँ स्वयम् अपने भक्तों को लेकर क्या-क्या खेल करती हैं वह सब हमारी समझ के बाहर है । किसी के पुत्र-जन्मोत्सव तथा किसी के पुत्र-शोक इन दोनों विपरीत चित्त-गति को माँ एकभाव ही से ग्रहण करती देखी गयी हैं । कभी शोकातुर को देख कर हँसी हैं तो कभी उल्लसित को देख रो देती हैं । कोई यदि माँ के पैरों के ऊपर पड़ कर रोता है तो उसे ढाढ़स देती हुई "ऐसा न करो"कह कर पैर खींच लेती हैं । कोई बहुत देर तक पैर पकड़े रहता है, और माँ भी कुछ न कह चुपचाप बैठी रहती हैं । एक दिन एक स्त्री पुत्रशोक से कातर हो माँ के चरणों में पड़ रोने लगी । माँ ने भी इतनी जोर से रोना आरम्भ किया कि वह अपना सब दु:ख व रोना भूल गयी । वह माँ का प्रसन्न बदन देखने के लिए आतुर हो बोली "माँ ! अब मैं नहीं रोऊँगी, तुम शान्त हो जाओ ।"

बहुतों ने इस बात का अनुभव किया है कि माँ के श्रीचरण दर्शन से, उनके मधुर वाक्य श्रवण से, उनकी पदधूलि ग्रहण करने से प्राणों में एक शुद्ध भाव की व्यंजना होती है । एक दिन आधुनिक विचारों वाले मेरे एक बंगाली मित्र जो विलायत हो आये थे अनुरोध से माँ के दर्शन को गये । उन्होंने बताया कि माँ के दर्शन होने से उनका बहुत दिनों का भूला हुआ गुरुमंत्र फिर से जग उठा । इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिले हैं कि उनके चरणों में पूजा, जप, ध्यान रूप भगवान् की आराधना में निरत हो लोगों ने शक्ति तथा एकनिष्ठता का अनुभव किया । श्रद्धा के साथ

उनको आदर्श मान कर उनके ऊपर पूर्ण लक्ष्य रख कर अनेक ही श्रेय की ओर अग्रसर हुए हैं । सिद्धेश्वरी में कीर्तन में एक बार माँ को एक सोलह साल की लड़की ने भावावेश में विस्मय और आनन्द से उत्फुल्ल हो पकड़ लिया । इससे उसके शरीर में ऐसा परिवर्तन हुआ कि 'हरिबोल' 'हरिबोल' कहते कहते वह जमीन में लोटने लगी । तीन चार दिन तक हरिनाम करती रही, उसका ऐसा ही तन्मय भाव रहा ।

यह भी सुना गया है कि कोई कोई माँ के दर्शन व स्पर्शमात्र से पूर्व के किये हुए अशुभ कर्मों से मर्माहत और सन्तप्त हो आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर हुए हैं । ऐसा भी अनेक बार देखा गया है कि जिसे दुनिया पापी या हीन कह कर अलग कर देना चाहती है वह भी माँ का संग लाभ कर कृतार्थ हुआ है । माँ कहती हैं "जो कुछ नहीं कर पाते हैं, जिनके धर्मजीवन में कोई सहायक नहीं हैं, उन्हीं से मेरा विशेष प्रयोजन है ।" इस प्रकार के भी अनेक दृष्टान्त हैं कि जो धर्मजीवन में अग्रसर मात्र हुए हैं वे माँ की शरण में जा उन्नति लाभ कर गये हैं । और कोई कोई शास्त्रज्ञानी, कर्मनिष्ठ होने पर भी माँ का दो दस दिन संसर्ग पाकर भी माँ से दूर हो गये । माँ कहती हैं "समय बिना आये कुछ नहीं हो सकता, जिसे जितना पाना था वह पा गया ।"

कीर्तन के समय देखा गया है कि कुत्ता और बकरी भी माँ के पास बैठ जाते हैं, उनके घुटने पर सिर रखते हैं, कभी माँ के साथ घूमते हैं, कभी लूट[१] के समय मनुष्यों की तरह ढूँढ़ ढूँढ़ कर

१. कीर्तन के बाद बतासे फेंक दिये जाते हैं । लोग प्रसाद मान कर उन्हें उठाकर खाते हैं । इसे ही 'हरि लूट' या 'लूट' कहते हैं ।

बतासा खाते हैं। क्रूर विषधर सर्प भी माँ के साथ देखे गये हैं। एक दिन सिद्धेश्वरी में माँ पेड़ के नीचे बैठी थीं। श्रीमान् गिरिजाप्रसन्न सरकार ने देखा कि एक साँप माँ की पीठ पर फन फैलाये है, जबकि स्थान चारों ओर से साफ था। निरंजन के घर भी एक रात बिजली की रोशनी में एक साँप माँ के पीछे-पीछे चल रहा था। बहुत से स्थानों पर माँ के साथ-साथ सर्प देखा गया है।

श्री श्री माँ के उपदेश इतने व्यापक, सरल तथा प्राणस्पर्शी होते हैं कि सुन कर ऐसा लगता है मानो अन्तरात्मा वाणी रूप में आत्मप्रकाश कर रहा है। उनका प्रत्येक वाक्य सनातन सत्य का आभास देता है। वह कोई तर्कयुक्त मीमांसा नहीं करतीं, इच्छा से किसी को उपदेश या आदेश भी नहीं देतीं। अपने आप जिसको जो लेना होता है वह पा लेता है।

ऐसा भी देखा गया है कि कोई अनेक प्रश्न ले माँ के पास गया और माँ किसी अन्य के साथ बातें कर रही हैं किन्तु उन बातों द्वारा उसकी शंकाओं का भी समाधान हो गया। एक बार 'देवधर' वैद्यनाथ जाने पर बालानन्द स्वामी जी ने कहा, 'माँ ! अपनी गठरी तो खोलो।" माँ ने उत्तर दिया, "गठरी तो बाबा सदा ही खुली है।"

माँ के बहुत से उपदेश 'सद्वाणी' में छप गये हैं। और कुछ यहाँ भी उल्लिखित हुए हैं। प्रतिदिन हँसी और बातचीत में जो धर्म और नीति विषयक बातें सुनाई पड़ती हैं, उन सबको यदि संग्रह किया जाय तो एक अपूर्व ज्ञान-ग्रन्थ हो जायेगा। छोटी-सी वस्तु से लेकर माँ महत् तत्त्वों का विवेचन कर देती हैं।

हमारा छोटा परिवार एक विराट् विश्व का अङ्ग है, ससीम जीव जीवन के घात प्रतिघात में असीम का संधान पाने की चेष्टा करता है, यही माँ की बात, हँसी तथा गान कीर्तन, हाव भाव, चाल चलन में प्रगट होता है। उनके वचन तथा शारीरिक कार्य सभी उपदेशपूर्ण हैं, सांसारिक और धार्मिक दोनों ही क्षेत्रों में उनका प्रयोग आवश्यक है। उनके गुणों में से यदि केवल एक ही को आदर्श मान कर चला जाय तो जीवन धन्य हो जावे। धर्म पिपासु को तो अक्सर ऐसा लगता है कि दुःख दैन्य को नष्ट करने के लिए उन्होंने सर्वमंगल स्वरूप यह देह धारण की है।

माँ के उपदेशों का मूलतत्त्व यह है कि धर्म का प्राण या सार किसी जटिल बन्धन या आचार की चहारदीवारी में निबद्ध नहीं है। जीवनरक्षा का अर्थ ही धर्मरक्षा है, यह मन में धारणा बना दैनिक जीवन के आहार, विहार, धनोपार्जन आदि के भीतर आन्तरिकता तथा सरलता के साथ सहज धारा से धार्मिक साधना की ओर भी मन लगाना मनुष्य के लिए आवश्यक है। माँ कहती हैं, "सद्बुद्धि से कर्म करो" कर्म करते करते ही एक-एक कदम ऊँचे उठाने की चेष्टा करो। सब कामों में ही उन्हें लिए रहो, फिर कुछ छोड़ना न होगा। तुम्हारे काम भी अच्छी तरह होते चलेंगे और लक्ष्यपति का संधान भी सहज होगा। माँ जिस प्रकार बच्चे को यत्न से बड़ा करती है उसी प्रकार तुम भी बड़े होते चलोगे। जब जो काम करो मन, वचन और शरीर से सरलता और सन्तोष से करना तभी कर्म में पूर्णता आवेगी। समय होने पर सूखे पत्ते आप से आप गिर जावेंगे तथा नये पत्ते आ जावेंगे।" मैंने सुना माँ जब संसार का कोई भी काम करती थीं तो खाना, पीना, पहनना,

ओढ़ना, यहाँ तक कि अपने शरीर की रक्षा की बात भी उनके ख्याल में नहीं आती । सारे दिन संसार का काम करतीं तथा बड़ों के हुक्म की तामील करतीं । पास-पड़ोस की स्त्रियाँ कहतीं "इस बहू में दुनिया की अक्ल बहुत कम है ।"

माँ कहती हैं, "प्रत्येक का मन अपने काम के लिए जैसे स्कूल, आफिस, दूकान इत्यादि का एक न एक निर्दिष्ट समय रहता है, उसी प्रकार २४ घण्टे में से कोई समय जितना सबको साध्य हो निर्दिष्ट रखना चाहिए । मन में संकल्प करना होगा कि मैंने सदा के लिए अपने परम देवता के निमित्त उसे उत्सर्ग कर दिया है, उस समय उनकी चिन्ता के सिवाय और कुछ काम नहीं करूँगा । परिवार में भी सबके लिए यहाँ तक कि नौकर के लिए भी इसी प्रकार एक समय निर्दिष्ट कर दे । बहुत दिनों तक ऐसा करते ईश्वरचिन्ता तुम्हारे लिए स्वाभाविक हो जावेगी । फिर कोई सोचने की बात ही न रहेगी । तुम स्वयम् ही अनुभव करोगे कि प्रत्येक विचार और कर्म में एक अज्ञात कृपा की धारा तुम्हें बल तथा उत्साह प्रदान कर रही है । जिस प्रकार नौकरी के बाद बिना काम किये भी पेन्शन मिलती है, वह भी उसी प्रकार है, बल्कि उसकी तुलना में धर्म-राज्य में पारितोषिक अधिक ही मिलता है और सहज में लभ्य भी है ।

"नौकरी की पेन्शन मरने के बाद नहीं मिलती, किन्तु उस पेन्शन का लय नहीं, क्षय नहीं है । जो धन इकट्ठा करते हैं, वह घर में एक ऐसा गुप्त स्थान रखते हैं जहाँ जब जो कुछ हो जमा रखते जाते हैं, हमेशा उसकी रखवाली करते रहते हैं । उसी तरह भगवान् के लिए जिसे जैसे इच्छा लगे, हृदय के एकान्त कोने में

एक स्थान रखो । जब भी समय पाओ वहाँ उनका नाम और भाव संचित करते रहो ।"

एक दिन अनेक प्रकार के प्रणामों की प्रणाली दिखाते हुए माँ ने कहा "जो जितना अपने को भूलकर एकनिष्ठा के साथ प्रणाम कर सकता है वह उतना ही शक्ति पाता है तथा आनन्द लाभ करता है । यदि और कुछ न कर सको तो सुबह-शाम देह, मन, प्राण के साथ एक कातर ही प्रणाम करो । उनको तनिक स्मरण करने की चेष्टा करो ।" इसी प्रसंग में उन्होंने कहा, "दो तरह के प्रणाम होते हैं, जानते हो ? जल के भरे हुए घड़े को उड़ेलने की तरह अपने हृदय के समस्त भावों को उड़ेल कर नमस्य को समर्पण कर देना । दूसरी तरह का प्रणाम होता है पाउडर के डिब्बे के छिद्रों में से पाउडर छिड़कने की तरह । तुम लोगों के मन का अधिकांश भाव तो मन ही में पड़ा रहता है, एक दो बिन्दु श्रद्धा के इधर-उधर निकाल पाते हैं ।"

स्व० प्रमथ बाबू पोस्टमास्टर जनरल होकर ढाका से बदली हुए । विदा के समय माँ के चरणों में प्रणाम किया । माँ बोलीं, "कौन किसको प्रणाम करे, तुमने तो स्वयं अपने को ही प्रणाम किया ।" वह इस बात को सुन कर विस्मय और आनन्द से रोमांचित हो गये ।

एक बार श्रीमान् अटलबिहारी भट्टाचार्य शारदीय पूजा के उपलक्ष्य में शाहबाग जाकर बीमार पड़ गये । उनकी उत्कट अभिलाषा हुई कि माँ सांसारिक माताओं की तरह उनका माथा दाबे, माँ ने जाकर अटल के सिर से पैर तक हाथ फेरा । वे स्वस्थ होकर राजशाही अपने नौकरी के स्थान पर चले गये । कुछ दिन

बाद शाहबाग में वह प्रसंग चला। मैं बोला "जैसा वह खुद है वैसी ही उसकी बुद्धि है, माँ से सेवा करवाने का उसका क्या अभिप्राय था, मेरी समझ में नहीं आया।" यह बात सुनते ही माँ का चेहरा बदल गया। "तेरे पैर भी दबा दूँ क्या" कहती हुई मेरी तरफ आने लगीं। मैं वहाँ से उठ भागा, माँ भी मेरे पीछे-पीछे आने लगीं किन्तु पिताजी ने उन्हें पकड़ लिया। बालिका की तरह माँ की वह तेजोमयी मूर्ति आज भी मुझे याद है। उस समय श्री शंशाक मोहन मुखर्जी (पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्दजी) "माँ" "माँ" चिल्लाकर उनके पैरों पर पड़ गये थे। इस उपलक्ष्य में माँ ने बताया "जिस प्रकार सिर हाथ पैर आदि एक मनुष्य के अंग हैं, उसी प्रकार मैं समझती हूँ तुम सब भी इस शरीर के विशेष-विशेष अङ्ग-प्रत्यङ्ग हो।"

एक दिन वाराणसी के स्वर्गीय निर्मलचन्द चटर्जी ने माँ के चरण-कमलों में अनेक फूल चढ़ाये। उसी समय एक आदमी डलिया में कुछ फूल सजाकर मन्दिर में पूजा करने के लिए माँ के पास से ही निकला। माँ ने उन चढ़े हुए फूलों को उस डलिया में रख दिया। निर्मल बाबू के पूछने पर कि माँ ने ऐसा क्यों किया, माँ बोलीं, "जिसका सिर है उसी के तो पैर हैं। सब लोग इस प्रकार के भावों के साथ एक ही की तो पूजा करते हैं।"

एक दिन बाँस की छोटी टहनी से माँ जमीन के ऊपर कुछ चोट कर रही थीं। एक मक्खी को चोट लगते ही वह मर गयी। माँ ने मरी मक्खी को शीघ्रता से हाथ में ले लिया। बहुत लोग उपस्थित थे। अनेक प्रकार के प्रसंगों में चार पाँच घण्टे कट गये। उसके बाद माँ ने मुट्ठी में से मरी हुई मक्खी को निकाल कर

मुझसे कहा, "यह मक्खी जो मर गयी है इसकी किसी प्रकार सद्गति का उपाय कर सकता है?" मैंने कहा "सुना है कि मनुष्य की देह ही में स्वर्ग है।" यह कहकर मैं माँ के हाथ से उस मक्खी को लेकर निगल लिया।

माँ हँसते-हँसते बोलीं "यह क्या किया? मक्खी खाने से उल्टी हो जाती है।" मैंने कहा "यदि आपके आदेशानुसार मेरे द्वारा इसकी सद्गति हो जावे तो मुझे कुछ नहीं होगा।" वास्तव में मुझे कुछ न हुआ।

माँ ने इस सम्बन्ध में बताया है "कीड़े-मकोड़े, मक्खी, कीट, पतंग, मनुष्य सभी तो एक ही परिवार के हैं। किसके साथ किसका जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध है कौन जाने?"

एक धार्मिक मुसलमान (मौलवी जैनुद्दीन हुसैन) मेरे मित्र थे। वह हर समय ही ईश्वर चिन्ता किया करते थे। एक दिन बृहस्पतिवार को मैं और निरञ्जन शाम के समय उन्हें शाहबाग ले गये। देखा कि नाट मन्दिर में कीर्तन हो रहा है। हम तीनों कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे ऐसी जगह खड़े हो गये जहाँ से कीर्तन में से कोई हमें देख न सके। प्रायः आध घण्टे बाद देखा कि माँ नाटमण्डप से बाहर आ रही हैं। माँ हिलते डोलते तेजी से चलकर जहाँ हमलोग थे वहाँ आ पहुँचीं और दाहिने हाथ में मुसलमान भाई का शरीर छूकर टहलने लगीं। हम तीनों भी माँ के पीछे-पीछे चलने लगे। शाहबाग में एक कोने में एक मुसलमान फकीर की कब्र है। माँ ने उस कब्र पर जाकर नमाज के नियमानुसार अङ्ग प्रत्यङ्ग चलाकर उठ और बैठ नमाज के वचन पढ़े। उनका साथ मुसलमान भाई ने भी दिया। नाटमण्डप

(नाचघर) में लौटने पर फिर से कीर्तन आरम्भ हो गया। मुसलमान भाई भी सबके साथ ताली बजा-बजा कर घूमने लगे। बृहस्पतिवार के दिन उस कब्र पर दिया और बतासा चढ़ता था किन्तु घटनाचक्र से वह आदमी जिस पर बतासा चढ़ाने का भार था उस दिन नहीं आया। माँ के कहने से उन मुसलमान ने वहाँ बतासे चढ़ाये। उस मुसलमान को कब्र पर चढ़े बतासे माँ को खिलाने की इच्छा हुई, माँ के पास बतासे का थाल ले जाते ही माँ ने मुँह खोल दिया तथा कुछ बतासे इस प्रकार माँ को खिला दिये गये। उन्होंने भी हरि-लूट का प्रसाद ग्रहण किया। वह खूब कट्टर मुसलमान थे। माँ को देखने से पहले उनके विचार भी अन्य प्रकार के थे। लेकिन मैंने देखा कि उक्त घटना के बाद से माँ के ऊपर उनकी अटल श्रद्धा और विश्वास जाग्रत हुआ।

माँ ने और भी एक दिन एक मुसलमान बेगम के अनुरोध से उसी कब्र पर नमाज पढ़ी थी। वे शिक्षिता थीं। उन्होंने बताया कि नमाज एक ही है। माँ ने बताया "जिस फ़कीर की समाधि इस कब्र में है उसके सूक्ष्म शरीर को ४, ५ वर्ष पूर्व मैंने मैमनसिंह (बाजितपुर) में देखा था। ढाका शाहबाग आने पर भी उनके तथा उनके शिष्य के साथ मेरी भेंट हुई थी। फकीर साहब खूब लम्बे चौड़े तथा अरब देशीय थे।" खोज करने पर ऐसा ही जाना गया था।

एक बार माँ विक्रमपुर में रायबहादुर योगेशचन्द्र घोष के घर गयीं। वहाँ उस दिन हरिनाम कीर्तन हो रहा था। माँ को भाव हुआ। प्राय: डेढ़ सौ या दो सौ हाथ दूरी पर अंधेरे में एक मुसलमान लड़का हिन्दुओं जैसा कपड़ा पहिने छिपा बैठा था। माँ

भीड़ ठेलती हुई उसके पास पहुँच "अल्ला हो अकबर" इत्यादि कहने लगीं। लड़के ने भी रोते-रोते माँ का साथ दिया। वह बोला "जिस प्रकार सहज और स्पष्ट भाव से माँ के मुख से 'अल्ला' का नाम निकला उस प्रकार हम हजार चेष्टा करने पर भी नहीं निकाल पाते। माँ के साथ अल्ला का नाम लेने में जो आनन्द मिला वह समस्त जीवन में नहीं पाया।"

एक विशिष्ट मुसलमान परिवार में माँ ने 'हरिनाम' का प्रवर्तन किया था। 'हरिनाम' करते-करते उन लोगों की आँखों से आँसू गिरने लगते थे। हिन्दू देव-देवियों को वे मानते थे तथा माँ को विशेष रूप से श्रद्धा करते थे। इस प्रसङ्ग में माँ ने कहा हिन्दू-मुसलमान एवं अन्यान्य जाति के सभी तो एक ही हैं, एक जन को ही सब चाहते हैं और पुकारते हैं, नमाज और कीर्तन सब एक ही तो हैं।"

श्री कालीप्रसन्न कुशारी तथा उनकी स्त्री श्रीमती मोक्षदा सुन्दरी देवी (पिताजी की बहिन) माँ से बहुत स्नेह करते थे, माँ को समीप पाने पर उनकी प्रत्येक लीला में श्रद्धा और विश्वास से योग देते थे। एक बार कुशारी महाशय ढाका आये। एक दिन शाहबाग में अनेक आध्यात्मिक चर्चा करने के बाद जब जाने को प्रस्तुत हुए तो हँसते-हँसते बोले, "यदि आप में शक्ति है तो मुझको भस्म तो कीजिये ?" ऐसा कह कुछ जलती हुई अगरबत्ती हाथ में लेकर रवाना हुए। पिताजी तथा माँ भी कहीं जाने वाले थे। वे भी उनके साथ हो लिये। खूब धूप हो रही थी, कुशारी महाशय अपने छाते से माँ के ऊपर छाँह करते चल रहे थे। इसी बीच में सहसा कुशारी महाशय चौंक कर बोले "अरे यह सिर पर

आग कहाँ से बरस रही है ? मुझे भस्म कर रही है क्या ? अब मैं आपकी शक्ति का परिचय पा चुका हूँ और मत जलाइये ।" जल्दी से ऐसा कहते हुए छाते की ओर देखने लगे, इसी बीच में छाता थोड़ा जल गया था ।

एक दिन एक आदमी कुछ फूल माँ के पैरों पर चढ़ा गया । उनमें से कुछ फूलों को ले उनकी पुंखुड़ियाँ तथा पराग आदि अलग कर माँ ने स्थूल, सूक्ष्म और बहिर्जगत् के विषय में बहुत कुछ आलोचना कर भगवान् की अनन्त लीला समझा दी ।

देश-विदेश में भ्रमण करने के सम्बन्ध में माँ ने कहा, "मैं देखती हूँ कि सारा संसार एक बाग है । जीव, जन्तु, वृक्ष, लता, सभी इस बाग में नाना प्रकार से खेल रहे हैं, सभी की अपनी विशेषता है, यह सब देख मुझे आनन्द होता है । तुम सबने मिलकर बाग का ऐश्वर्य बढ़ा दिया है । मैं बाग के एक कोने से दूसरे कोने को यदि जाऊँ तो तुम इतने व्याकुल क्यों हो जाते हो ?"

१९३१ ई० में मैदान में घूमते-घूमते एक दिन माँ बोलीं "प्रार्थना साधना का विशेष अंग है । प्रार्थना की शक्ति अमोघ है एवम् प्रार्थना में ही जीव और जगत् का प्राण है । जिस समय जो हृदय में आवे 'उन्हें' बताना तथा सरल और व्याकुल हो उनके प्रति शरणागति की प्रार्थना करना ।" उस समय मैंने अखबार में पढ़ा था कि लार्ड इरविन ने वायसराय होकर यहाँ भारत में आने से पहले अपने पिता की राय ली तो उनके पिता ने कहा "तुम फलाफल के विषय में कुछ मत सोचो, यह हम लोगों के हाथ में नहीं है, फिर भी प्रार्थना आदि से भविष्य का आभास मिल सकता

है । फिर दोनों पिता पुत्र ने गिरजे में जा उपासना की । वहाँ से निकलकर पिता ने कहा "तुमको भारत जाना ही होगा ।" लार्ड इरविन ने कहा "मुझे भी ऐसा लग रहा है ।"माँ ने यह सुनकर कहा "बहुत अच्छी बात है । केवल बालक के समान विश्वास चाहिए । अभ्यास से ही विश्वास की भित्ति उठती है शुद्ध विश्वास होने से सरल प्रार्थना आती है । प्रार्थना में सत्य का भाव जाग्रत होने से वे कृपा करके फल के स्वरूप में प्रगट होते हैं ।"

अन्य एक दिन माँ ने बताया "कृपा का अर्थ ही है अहैतुकी कृपा । जब कृपा होने को ही है तब उनकी इच्छा से ही कृपा अवतरित होती है । जैसे, जिस प्रकार बच्चा खेलते खेलते माँ को भूल गया, माँ ने स्वयम् जाकर उसे गोद में ले लिया । बालक ने पुकारा भी नहीं पर माँ का स्नेह प्रगट हो गया । तुम लोग कहोगे कि कृपा पूर्वजन्म के सुकृतों का फल है । यह एक तरह से सत्य होने पर भी दूसरी ओर वह स्वाधीन है इसलिए कृपा का कारण क्या है ऐसे प्रश्न उठने पर भी आलोचनीय व जिज्ञास्य नहीं है । उनकी कृपा तो सबके ऊपर समान भाव से है । जब जिसमें कृपा लाभ करने का उपयुक्त समय अथवा योग्यता होती है तब वह स्वयं अनुभव करता है कि वह कृपालाभ कर रहा है । एक आश्रय ले उसके साथ अविछिन्न रूप से रहने की चेष्टा कर तब देखेगा कि जैसे बाँस से लगी बाल्टी कुएँ में डाल देने से पानी भर कर अनायास ही ऊपर चली आती है उसी प्रकार उनकी कृपा भी निरन्तर पायेगा ।" इसी प्रसंग में माँ से पूछा गया कि जिन्होंने भगवान् का दर्शन पाया है क्या वे किसी और को भी भगवद्दर्शन करा सकते हैं ? माँ ने कहा, "जिसके देखने का समय होता है

वही देख पाता है । फिर भी जिन्होंने उनका दर्शन पाया है वे पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं ।"

एक दिन माँ के साथ जन्मान्तर सम्बन्धी बात चल रही थी । माँ बोली "जन्मान्तर सत्य है । आँखों में मोतियाबिन्द होने पर उसे काट दिया जाय तो जिस प्रकार देखने की शक्ति फिर लौट आती है उसी प्रकार ध्यान-योग से विशुद्ध-बुद्धि स्वरूप में अवस्थित होने पर मन्त्र और देवतत्त्व का विकास लाभ होता है, पूर्वजन्म के संस्कार चित्त में प्रकट होते हैं । जिस प्रकार ढाका में बैठे हुए कलकत्ते की कल्पना कर वहाँ की धारणा कर सकते हो, उससे भी स्पष्ट रूप में पूर्वजन्म का चित्र अन्तस्तल पर प्रतिबिम्बित हो सकता है ।" माँ ने कहा "तुम लोगों को देख कभी-कभी तुम लोगों के जन्मजन्मान्तर का चित्र आँखों के सम्मुख आ जाता है ।" एक बार माँ के कलकत्ते जाने पर एक भद्र पुरुष, उनकी पत्नी तथा उनका सात आठ बरस का लड़का माँ को देखने आये । माँ लड़के को देखते ही बोलीं "पूर्वजन्म में यह लड़का इस शरीर (माँ) का भाई था ।" माँ का एक भाई बहुत छुटपन में मर गया था । मृत्यु के पहले कुछ चोट लगने से उसका एक हाथ टेड़ा हो गया था । उस लड़के का भी एक हाथ टेड़ा था ।

कभी-कभी माँ में असीम अलौकिक तेज तथा साहस लक्षित होता है; भयभीति का लेश भी नहीं देखा जाता । तब जो उनके मन में आये या मुख से बाहर हो वह कार्यरूप में परिणत होगा ही । उनके भाव और कर्म यदि स्वच्छन्द रूप से चलते रहें तो प्राणिमात्र का कल्याण ही होगा, कुछ बाधा देने से अनेक

समय अमङ्गल घटता है । बचपन में भी माँ की ऐसी ही लीला थी । चार पाँच बरस की आयु में माँ रोज सुबह अपनी ताई के यहाँ मट्ठा लेने जाया करती थीं । एक दिन मट्ठे के लिए जब माँ गईं तो उनकी ताई नाराज होकर बोलीं "रोज मट्ठा पीती है, जा आज नहीं मिलेगा ।" वह ऐसा कह ही रही थीं कि दधिमथन की हड़िया फूट गयी और सब दही फैल गया । वह अवाक् हो माँ की ओर देखने लगीं । इसके बाद से यदि माँ को स्वयम् कभी देर हो जाती तो भी वे उन्हें बुलाकर मट्ठा देती थीं ।

माँ फूल जैसी कोमल होने पर भी कभी कभी हम लोगों के कर्मवश वज्र से भी कठोर हो जाती हैं । एक बार किसी व्यर्थ की बात पर माँ ने मुझसे कहा "जा दूर हो जा ।" एक बार माँ का आदेश उल्लघंन करने पर माँ मौन हो गयी थीं । इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं जबकि मुझ पर उनके शासन की पराकाष्ठा ही हो गयी थी। कुछ गलती करने पर दुःखित हो माँ की अमृतवर्षिणी दृष्टि की करुणा से चित्त शुद्ध तथा शान्त हो जाता है । किन्तु यदि मन में क्रोध और अभिमान रहे तो बिना पश्चात्ताप किये हृदय में मर्मभेदी पीड़ा होती रहती है । एक बार पिताजी मेरा पक्ष ले माँ को समझा रहे थे तो माँ ने कहा "जिस पर कठोर व्यवस्था होने पर भी जो सह सकता है, उसी पर ऐसी कठोर व्यवस्था होती है । पेड़ काटने के लिए जैसे पहले कुल्हाड़ी फिर हसिया चाहिए तथा डाल तोड़ने के लिए हाथ ही काफी है, उसी प्रकार शासन कोमल तथा कठोर दोनों ही तरह का जरूरी है ।"

दुःखी और पीड़ित के कल्याण के लिए माँ की असीम कृपा अनेक रूपों में प्रकाशित होती है । माँ कहती हैं "मैं तो अपनी

इच्छा से कुछ करती या बोलती नहीं हूँ तुम लोग अपने भावानुसार जो करवाते तथा बुलाते हो वही करती और बोलती हूँ। अनेक समय किसका क्या होगा यह मैं जान लेती हूँ किन्तु बोल नहीं पाती।" कितने ही लड़के-लड़कियाँ परीक्षा में सफलता, कितने लोग नौकरी, व्यवसाय, कन्या के विवाह, पुत्र-लाभ, रोगमुक्ति इत्यादि में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में माँ की कृपा-लाभ कर चुके हैं उसकी गिनती नहीं है। अनेक को रोगमुक्त करने के उद्देश्य से अपने अंग-प्रत्यंग में चोट लगाकर उनके लिए स्वयम् दुःख भोगा है, इसकी सीमा नहीं है। ऐसा भी देखा गया है कि जिन लोगों के दुःख, अशान्ति की खबर दूसरे के मुख से सुनने अथवा माँ के मन मे स्वतः ही उसका चित्र सामने आ जाने से उन्होंने सुख और शान्ति-लाभ किया है। माँ से सुना है कि जिस विषय को देख या सुन कर माँ का स्मरण हो उठे, उसकी सदा ही सुव्यवस्था हो जाती है। अनेक ही रोग में, शोक में, तथा स्वप्न में माँ का दर्शन पाकर धन्य हुए हैं।

एक बार एक १२ साल की लड़की को लकवा मार गया था। उसके बाप उसे माँ की शरण में लाये। माँ ने उस लड़की से जमीन पर इधर-उधर लुढ़कने को कहा। वह मुड़ तक नहीं सकती थी इधर उधर कैसे लोटे ? माँ ठाकुर-पूजा के लिए सुपारी काट रही थीं। उसके दो टुकड़े फेंककर उससे बोलीं "ले, हाथ बढ़ा कर ले !" उसने बड़ी मुश्किल से उन्हें लिया। फिर वे लोग चले गये। घर में जाकर लड़की लेटी रही, शाम को बाहर रास्ते में एक गाड़ी की आवाज सुन सहसा बिछौने से कूद कर गाड़ी देखने दौड़ गयी। इसके बाद वह धीरे-धीरे चलने फिरने लगी।

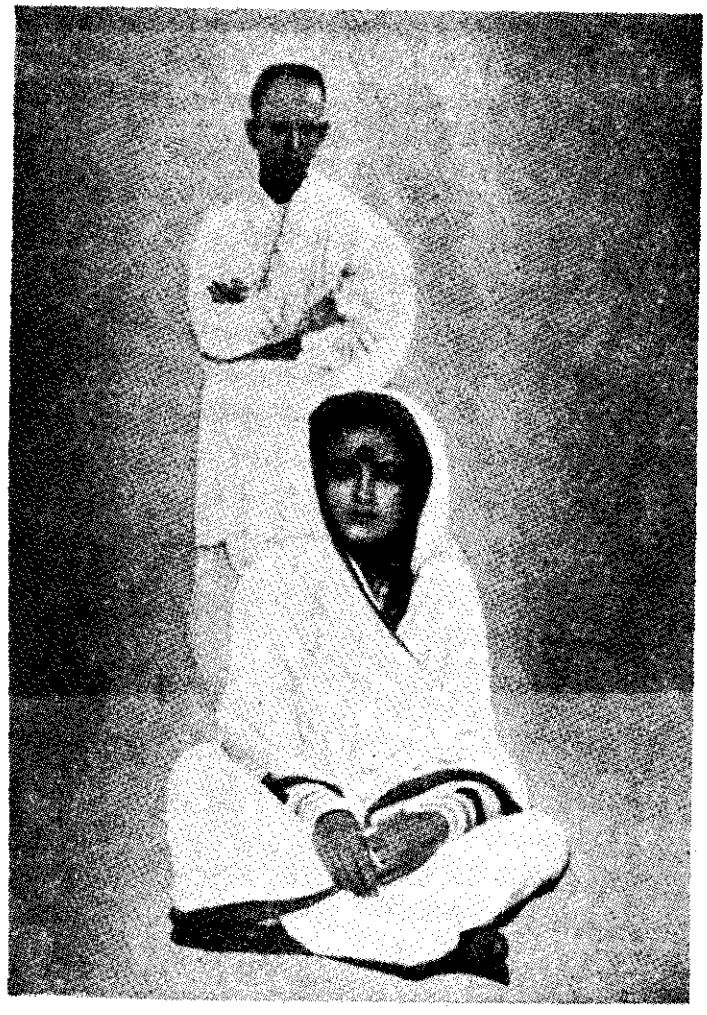

भाईजी माँ के पश्चात् सूक्ष्म शरीर में

एक दिन ढाका में मैदान में घूमते-घूमते माँ बोलीं "रास्ते में जो गाड़ी जा रही है उसे ठहरा दो ।" गाड़ी ठहरायी गयी, माँ उसमें चढ़ गयीं । गाड़ी वाले ने पूछा "कहा जायेंगी ?" माँ हँसते-हँसते बोलीं, "तुम्हारे घर ।" वह जाति का मुसलमान था । माँ की यह बात सुनकर बिना कुछ कहे वह माँ को अपने घर ले गया । वहाँ जाकर देखा कि एक वृद्ध मृतप्राय अवस्था में पड़ा है, आस-पास उसके सम्बन्धी रो रहे हैं । माँ ने मुझसे कहा, "कुछ मिठाई तो ले आ ।" मिठाई मँगवा कर सबको बाँटी, फिर माँ लौट आयीं । बाद में सुना गया कि वह उस बार नीरोग हो गया । कभी-कभी किसी रोगी से माँ कहती हैं कि आँख बन्द कर शाम के समय जमीन पर जो कुछ मिले उसका सेवन करो । ऐसा करने से वह अच्छा हो जाता है । कभी रोगी को अपना आहार—दाल, चावल, तरकारी खिला देती हैं तथा उसका पथ्य साबूदाना, बार्ली स्वयम् ग्रहण करती हैं । ज्वर तथा पेट के दर्द में भी माँ के आदेश के अनुसार विपरीत भोजन करके भी अनेक ही नीरोग हुए हैं ।

मेरा पन्द्रह सोलह साल का लड़का रामानन्द दस बारह दिन से रक्त अतिसार से ग्रस्त था । माँ एक रात उसे देखने आयीं । उसी समय से उसके स्वस्थ होने के लक्षण दीखने लगे किन्तु माँ को अगले ही दिन १२ घण्टे की खूनी पेचिस हुई । कभी ऐसा भी देखा गया है कि रोगी जब ठीक होने वाला नहीं है तो वह माँ का आदेश पाकर उसकी रक्षा अथवा पालन करने की अनेक चेष्टा करने पर भी असफल रह रहा है । ऐसी स्थिति में माँ के हावभाव से ही उसके निष्फल होने का आभास मिल जाता है । शास्त्रों ने इस बात को भी माना है कि तीव्र या उत्कट शुभ कर्मों के द्वारा

कृपा के अनुकूल होने से प्रारब्ध का खण्डन किया जा सकता है, किन्तु उस कृपा को आकर्षित करने का कर्म करना कठिन है, यदि अहैतुकी कृपा ही न हो ।

माँ कहती हैं "जब तक दृष्टि है तभी तक सृष्टि है । मैं, तुम, सुख, दुःख, प्रकाश, अन्धकार ये सब द्वन्द्व हैं । स्वाभाविक कार्य तथा स्वधर्म पर जोर दो, अभाव और इन्द्रियों के कार्य त्यागने पर अन्तरात्मा जाग्रत होगी । तब उसमें सृष्टि निबद्ध करने से दृष्टि और सृष्टि के द्वन्द्व का समाधान हो जायगा ।"

बचपन में माँ के लिखने पढ़ने की सुविधा नहीं थी तथा माँ भी उस विषय में विशेष मन नहीं देती थीं । किन्तु आश्चर्य यह है कि माँ पुस्तक के अंश को पढ़तीं उसी में से उनके शिक्षक यहाँ तक कि स्कूल इन्स्पेक्टर भी प्रश्न करते । इसीलिए वह एक अच्छी छात्रा कहलाती थीं । अपने आप पुस्तक पढ़ना या कुछ लिखना बचपन से ऐसी उनकी आदत न थी । फिर भी वह अलौकिक ज्ञानभूमि पर अवस्थित हैं । जब भी उन्होंने जिस विषय को लिया, उसमें उनकी असीम निपुणता प्रकाशित हुई ।

एक दिन माँ बातों-बातों में बोलीं "इटली क्या ?" दो एक दिन बाद सुबह इटेलियन प्रोफेसर मिस्टर टुसी शाहबाग आये । वे ढाका यूनिवर्सिटी में आये थे । साहब ने इङ्गलिश में किसी विषय में जिज्ञासा की । उसका अनुवाद कर माँ को बताने के पूर्व ही माँ ने संस्कृत में साहब के प्रश्न का समुचित उत्तर दे दिया ।

माँ की हस्तलिपि के लिए अनेक प्रार्थना की गयी थी । उन्होंने कहा—"मैं स्वेच्छा से तो कुछ करती नहीं हूँ, यदि समय होगा तो मिल जायगी ।"

सौभाग्यवश १९३७ बंगाब्द के आठ आषाढ़ को श्री श्री माँ की हस्तलिपि मिल गयी । वह बंगला "मातृ-दर्शन" में छपी है ।

श्री श्री माँ के बहुत जगह फोटो लिये गये हैं । शायद अब तक ४०० प्रकार के फोटो खिंच चुके होंगे ।[१] किन्तु आश्चर्य यह है कि एक तस्वीर का मुख दूसरी से सम्पूर्ण रूप से नहीं मिलता है । ढाका के श्रीमान् सुबोधचन्द्र दासगुप्त और चटगाँव के श्री शशिभूषण दासगुप्त तथा अन्य अनेक ने श्री श्री माँग के बहुत से फोटों खींचे हैं । १९३८ ई० में अक्टूबर के महीने में शारदीय उत्सव में शशि बाबू ढाका आये थे एवं हम कई लोग मिलकर एक दिन सुबह माँ का फोटो खींचने शाहबाग गये थे ।

वहाँ जाकर सुना कि माँ कहाँ हैं यह कोई नहीं बता सकता ।

खोज करने पर पता लगा कि एक अँधेरे कमरे में माँ पड़ी हैं । शशि बाबू उसी दिन शाम को ढाका से अपने देश लौट जाने वाले थे । इसलिए वे उसी समय माँ का फोटो खींचने के लिए आतुर थे । पिताजी से विशेष रूप से कह, हम दोनों माँ को पकड़ कर लाये और फोटो के लिए उन्हें बिठा कर हम कमरे के सामने से कुछ दूर हट गये । माँ का उस समय गद्‌गद् भाव था । तस्वीर हिल गयी । इस आशंका से शशि बाबू ने १८ प्लेट व्यवहार किये । बाद में चटगाँव से सूचना मिली कि १८ प्लेटों में से केवल आखिरी तस्वीर अच्छी आयी है एवं माँ के ललाट पर चन्द्राकार प्रकाश पुञ्ज की प्रतिच्छाया दिखाई देती है । और विशेषता

---

१. यह १९३८ की बात है ।

यह थी कि माँ के पीछे मेरी तस्वीर भी आयी है । इस सम्बन्ध में उनके एक पत्र का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया गया है ।

फोटो के प्रिंट आने पर किसी-किसी ने कहा कि यह चित्रकार का कौशल है । इस सम्बन्ध में माँ ने पीछे बताया "जब अँधेरे कमरे में यह शरीर था, तब कमरे के चारों ओर एक ज्योति से भर उठा था । फोटो खींचने के लिए जब इस शरीर को बाहर लाया गया तो तब भी वह प्रकाश था । क्रमश: वह संकुचित हो कपाल पर केन्द्रित हो गया था । मुझे ऐसा ख्याल हुआ कि ज्योतिष भी मेरे पीछे है । अब यह ऐसा क्यों यह तुम्हीं समझो ।" वह तस्वीर इस अध्याय में दी गई है ।

शशि बाबू ने इस प्रसंग में मुझे लिखा था—"उक्त फोटो खींचते समय १८ प्लेट व्यवहार किये । पहले कुछ प्लेटों में तो कुछ भी नहीं आया । बाद वाले प्लेटों में कुछ छाया मात्र सी आयी । केवल अन्तिम ही में माँ की तस्वीर पूर्ण रूप से आयी । आप कैमरा की सीमा से बहुत दूर थे एवं माँ की ओर देखते हुए मुझे फोटो खींचने के लिए इशारा कर रहे थे । पहले से ही प्रत्येक फोटो लेते समय मुझे भय लग रहा था ओर फोटो खराब हो जाने की आशंका से दु:ख हो रहा था । अन्तिम प्लेट को Expose करते हुए मेरा मन अपूर्व आनन्द से भर गया । तब से मैंने माँ के चरणों में ही आश्रय लिया है । आजकल के दिनों में यदि इस प्रकार की घटना होती तो मेरी अवस्था क्या होती कह नहीं सकता ।"

●